

# उर्दू साहित्य का इतिहास

भाग १

(पद्य-खंड)

मूल-लेखक

डा० रामबाबू सक्सेना

एम० ए०, डी० लिट्

अनुवादक

श्री रामचंद्र टंडन

श्री शालिग्राम श्रीवास्तव

१३५०

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

द्वारा समाज की आलोचना ४११, अकबर के धार्मिक सिद्धान्त ४१६, अकबर की शैली और उसका महत्व ४१८, काव्यक्षेत्र में अकबर का स्थान ४१८, नादिर काकोरवी ४१८

परिशिष्ट—

४२०—४५३

नज़र लखनवी ४२२, चकवस्त लखनवी ४२४, ग़ज़लें ४२७, लंबे पद्य ४२८, मरसिए ४२८, राष्ट्रीय पद्य ४२६, मरसिए ४२८, सामाजिक कवितायें ४३२, धार्मिक कवितायें ४३२, नेचुरल अर्थात् प्राकृतिक कवितायें ४३३, रुबाइयाँ ४३३, चकवस्त की भाषा ४३४, चकवस्त समालोचक के रूप में ४३४, चकवस्त का गद्य लेख ४३५, डाक्टर इक़बाल ४३७, शिक्षा ४३७, मि० आर्नल्ड संपर्क ४३८, इंग्लैंड में ४३८, रचनायें ४३६, इक़बाल की कविता ४३६, इक़बाल की शायरी के तीन युग ४४१, इक़बाल की उर्दू ग़ज़लें और अन्य रचनाएँ ४४३, छोटी कवितायें ४४४, बड़ी कवितायें ४४४, अन्य कवितायें ४४५, इक़बाल एक हिन्दुस्तानी कवि के रूप में ४४५, इक़बाल पैन इस्लामिस्ट के रूप में ४४७, इक़बाल के दार्शनिक विचार ४४६, इक़बाल का संदेश ४४६, इक़बाल की रचना में आशा और आनंद ४५७, इक़बाल एक क्रियात्मक कवि थे ४५०, इक़बाल की प्राकृतिक रचनाएँ ४५०, इक़बाल की कविता के विशेषताएँ ४५२, इक़बाल की प्रसिद्ध ४५२ ।

अध्याय १

## उर्दू भाषा और उसकी उत्पत्ति

साधारणतया लोग उर्दू को फ़ारसी की एक शाखा उर्दू से क्या समझते हैं, इसका कारण यह है कि उसका आरंभ तात्पर्य है ? मुसलमान आक्रमणकारियों की सेना में और हिन्दुस्तान के मुसलमान सुल्तानों की राजधानियों में हुआ जान पड़ता है । उर्दू की फ़ारसी से उत्पत्ति होने की भूल साधारण लोगों से इस कारण भी होती है कि उसमें फ़ारसी शब्द बहुतायत से हैं और उसकी कविता के छंद तथा उसकी लिपि फ़ारसी जैसी हैं । इसी भूल के आधार पर साधारण जनता यह समझती है कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है, उसी प्रकार जिस प्रकार हिंदी हिन्दुओं की भाषा समझी जाती है । इसी आंते से, बहुत समय से उर्दू के पक्षपातियों और हिंदी के समर्थकों के बीच, दोनों भाषाओं की विशेषताओं और लोक-प्रियता को लेकर बराबर झगड़ा चला आता है, और इस तर्क-वितर्क में पड़कर लोग उर्दू भाषा की उत्पत्ति की ओर दृष्टि डालना भूल जाते हैं । सच बात यह है कि उर्दू भाषा उस हिंदी या भाषा की एक शाखा है जो सदियों तक दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाती थी और जिसका सीधा संबंध सूरीसेनी प्राकृत से था । यह भाषा जिसे पश्चिमी हिंदी कहना उचित होगा उर्दू भाषा की जननी समझी जा सकती है ।

यद्यपि “उर्दू” का नाम उस भाषा को बहुत समय बाद दिया गया, उर्दू भाषा का व्याकरण, उसके मुहावरे, और हिंदी शब्दों

का उसमें प्रचुरता से प्रयोग इस बात को स्पष्ट रूप से बताते हैं कि उसकी उत्पत्ति हिंदी से हुई, और यह आकस्मिक मात्र है कि वह हिंदुस्तान की आम भाषा बन गई। इसका कारण यह है कि दिल्ली जो इस भाषा का प्रारंभिक केन्द्र था, मुसलमान आक्रमणकारियों और बादशाहों का मुख्य स्थान तथा राजधानी थी। अतएव यह विचार करना, जैसा कि मीर अम्मन और कुछ अन्य पुराने उर्दू गद्य लेखकों का विचार है कि उर्दू एक मिश्रित भाषा है, जिसमें वह सब भाषाएँ सम्मिलित हैं जो किसी समय में दिल्ली के बाज़ारों में बोली जाती थीं, ठीक नहीं है। यह अवश्य सच है कि 'लश्कर' या बाज़ार से इस भाषा के विकास और उन्नति का इतना सम्बन्ध था कि इसका नाम ही "उर्दू" पड़ गया, जिसे तुर्की भाषा में "लश्कर" कहते हैं। भाषा में इस समय तक पुष्टि नहीं आई थी, वह निर्माण की अवस्था में थी, और अपरिचित शब्दों और वाक्यों को ग्रहण करने की उसमें बड़ी शक्ति थी, जैसी कि अब भी है।

इस समय में, उर्दू को अंग्रेजी नामकरण के अनुसार "हिन्दुस्तानी" कहते हैं, लेकिन हमारे विचार में यह नामकरण अच्छा होते हुए भी यथार्थ नहीं है; क्योंकि इस शब्द के अंतर्गत पूर्वी-हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, और राजस्थानी सभी आ जाती हैं। इसी प्रकार हमारे विचार में ब्रजभाषा को, जो कि पश्चिमी हिन्दी की एक शाखा है, उर्दू का मूलस्थान समझना, जैसा कि मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने भी समझा है, ठीक नहीं जान पड़ता। मथुरा और उसके आसपास बोली जाने वाली ब्रजभाषा, यद्यपि दिल्ली और उसके आसपास बोली जाने वाली भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, फिर भी दोनों भिन्न हैं। उर्दू का उद्गम दिल्ली और उसके निकट बोली जाने वाली भाषा से ही है।

उपर जैसा कि कहा गया है, उर्दू की उत्पत्ति उस उर्दू और बोली से हुई जो दिल्ली और मेरठ के आस पास बोली जाती थी, और जिसे पश्चिमी हिन्दी की एक शाखा सम्बन्ध समझना चाहिये। पश्चिमी हिन्दी स्वतः शौरसेनी प्राकृत से उत्पन्न हुई और उसकी निम्नलिखित शाखाएँ हैं—

बांगरू, ब्रज-भाषा, कनौजी, और दिल्ली के आस पास की बोली। उर्दू से फारसी शब्दों को निकाल कर उनके स्थान पर संस्कृत शब्द रख देने से आधुनिक 'क्लिष्ट हिन्दी' का विकास हुआ। इसी 'क्लिष्ट हिन्दी' में गद्य के ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनमें कि लेखकों ने संस्कृत के बड़े-बड़े शब्दों का व्यवहार किया है। लेकिन सच पूछिए तो उर्दू और हिन्दी अपना उत्पत्ति और प्रकृति की दृष्टि से एक ही भाषा हैं और इन दोनों में कोई भेद नहीं है। यदि कुछ भेद है भी तो उनके विकास तथा उन्नति के ढङ्ग में। उर्दू मुसलमानों की संरक्षता में पली इसलिये उसमें फारसी शब्दों की बहुतायत हो गई, हिन्दी अपने मूल उद्गम—संस्कृत—की ओर फिरी। परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान काल की साहित्यिक उर्दू और साहित्यिक हिन्दी के बीच एक गहरी खाई उत्पन्न हो गई है। एक में फारसी शब्दों और दूसरी में संस्कृत शब्दों को भरने की प्रवृत्ति चल रही है।

आरंभ में भाषा सहज और सीधी-सादी थी और फारसी का साधारण जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण उर्दू पर्याप्त थी। ज्यों-ज्यों उसमें उन्नति हुई, और वह एक भाषा तथा साहित्यिक भाषा बनती गई त्यों-त्यों उसमें फारसी, अरबी साहित्य पर और तुर्की शब्दों का समावेश होता गया। फारसी शब्द सुनने में बहुत भले मालूम होते थे इस कारण लेखकों ने अपनी रचनाओं में नवीनता का पुट देने के लिए उनको स्वतंत्रता पूर्वक व्यवहार में लाना आरंभ कर दिया और इस प्रकार से फारसी

प्रयोग जो कि मूल भाषा से बिल्कुल अलग थे और उसके साथ मेल नहीं खाते थे, भाषा में प्रबुद्ध होने लगे। इसी के साथ फ़ारसी लिपि भी कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ ग्रहण कर ली गई, क्योंकि फ़ारसी शब्द इस लिपि में अधिक सरलता से लिखे जा सकते थे। उर्दू कविता पर भी फ़ारसी का बड़ा प्रभाव पड़ा और वह भी फ़ारसी कविता की रूप-रेखा ग्रहण करने लगी। न केवल छंदों में वरन् विषय, कल्पना, कथा-प्रसंग और वाक्यों के संगठन आदि में भी उर्दू कविता ने फ़ारसी कविता की नक़ल की। उर्दू का पिंगल पूर्णतया फ़ारसी पिंगल का अनुकरण करने लगा। गद्य का भी यही हाल था। कुछ समय तक उर्दू कविता में फ़ारसी कविता का अनुवाद मात्र चलता रहा। सारांश यह कि फ़ारसी भाषा का विषय, विचारों और शैली की दृष्टि से उर्दू पर इतना प्रभाव हो गया कि उर्दू की प्रकृति और उत्पत्ति तक को लोग भूल से गए और कल्पित विद्वानों ने उर्दू के व्याकरण की भी फ़ारसी के ढंग पर रचना कर डाली।

मुसलमान विजेताओं के रूप में हिंदुस्तान में उर्दू में फ़ारसी आए। स्वभावतः फ़ारसी भाषा जो उनकी मातृ-शब्दों और प्रयोगों भाषा थी 'शाही' भाषा बनी। इसका परिणाम की बहुतायत के यह हुआ कि देशी भाषा परिचारिका की भाँति कारण दबकर और प्रभावित होकर अपनी स्वामिनी भाषा फ़ारसी की सेवा में लगी और उसी की शैली, मुहावरे आदि का अनुकरण करने लगी। लोगों को नई भाषा सीखने का चाव हुआ करता है। इसी कारण उस समय के लोग भी पुरानी प्रथा छोड़ने और नए शब्द और मुहावरे ग्रहण करने लगे। देशी भाषा में, जिसे अब सभ्रांत नागरिक छोड़ने लगे थे, और जो अब गाँवों तक सीमित होती जा रही थी, लोगों को अब कोई रस न आता था अतएव,

नूतनता के प्रेमियों ने नई भाषा के प्रति ध्यान दिया और उसे बड़े चाव और उत्साह के साथ सीखने लगे। इसी कारण, प्राचीन हिन्दी-कवियों की रचनाओं में फ़ारसी शब्दावली की प्रचुरता आश्चर्यजनक जान पड़ती है, जैसे चंद कवि के 'पृथ्वीराज रासो' को देखिए जो फ़ारसी शब्दों से भरा हुआ है। देशी भाषा के संकुचित परिधि के कारण भी यह आवश्यक हुआ कि नए विचारों को प्रकट करने के लिए नए शब्द ग्रहण किए जायँ। आरंभ में देशी भाषा में ऐसे शब्द बहुतायत से मिलते थे, जो या तो संस्कृत के शब्द थे या उन्हीं से बिगड़ कर दूसरे रूप में ज़बान पर चढ़ गए थे। जब मुसलमान आए तो भाषा में भी एक बड़ी क्रांति उपस्थित हुई। मुसलमान आक्रमणकारी बादशाह बन गए और दिल्ली उनकी राजधानी हुई। अब वह यहाँ पर बसने के लिए आने लगे न कि जिस प्रकार वह प्रतिवर्ष आते थे और लूट का माल लेकर वापस चले जाते थे।

जब दिल्ली राजधानी बन गई और बादशाह वहाँ अपने दल बल के साथ रहने लगा तो यहाँ के रहने वालों और विदेशी सिपाहियों में मेल-जोल बढ़ने लगा। एक दूसरे की भाषा और विचारों को समझने के लिए आवश्यक हुआ कि एक वर्ग दूसरे वर्ग के शब्द सीखे और उनका अपने ढंग पर उपयोग करे; और प्रकट है कि विजेता का प्रभाव विजित पर अधिक आ करता है। अतएव विजित लोगों की देशी भाषा, अर्थात् हिन्दी पर फ़ारसी का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ने लगा। इसी कारण उर्दू में फ़ारसी शब्द और प्रयोग बहुतायत से सम्मिलित हो गए। लेकिन हिन्दी ने अपना प्रभाव फ़ारसी पर कम डाला, क्योंकि फ़ारसी भाषा-भाषी अपनी भाषा को इस प्रकार के मिश्रण से बचाना चाहते थे। यह परिवर्तन, यद्यपि आरंभ में बहुत अव्यक्त रूप में आया था ज्यों-ज्यों मुसलमानों की जड़ दृढ़ होती गई, और वह इस देश में बसते गए, बराबर बढ़ता रहा, यहाँ तक कि अकबर के समय में एक

हिंदू अर्थ सचिव के आग्रह से ऐसी आज्ञा निकली कि प्रत्येक सरकारी नौकर को फ़ारसी सीखना अनिवार्य है। परिणाम यह हुआ कि फ़ारसी भाषा की जड़ दृढ़ हो गई और उसकी प्रतिष्ठा तथा महत्व बढ़ गया। लोग फ़ारसी, अरबी, तुर्की शब्द निस्संकोच हो कर बोलने लगे, क्योंकि वह सुनने में अच्छे जान पड़ते थे और प्रभावशाली थे और उनके बोलने वाले बरबस शिक्षित समझे जाते थे। इस के अतिरिक्त फ़ारसी के ज्ञान के कारण सरकारी पद भी सहज में मिलते और राजदरबार में सम्मान प्राप्त करने का भी यह अच्छा साधन था। ऐसी परिस्थितियों में प्रत्येक भाषा में इसी प्रकार से परिवर्तन होते हैं। जब कि इंग्लिस्तान के प्राचीन निवासियों पर नार्मन लोगों ने विजय प्राप्त की तो एंग्लोसैक्सन की भी नार्मन-फ्रेंच के हाथों यही दशा हुई। अतएव जिस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा के अंतर्गत दो प्रकार की बोलियाँ पाई जाती हैं, वही उर्दू के क्षेत्र में भी समझना चाहिए। उर्दू में फ़ारसी शब्दों के बाहुल्य के कई कारण हैं। मुसलमान जब विजेताओं के रूप में इस देश में आए, तो अपने साथ बहुत सी चीज़ों के नाम लाए, जिन के पर्याय संस्कृत या देशी भाषा में नहीं मिल सकते थे। चूंकि ऐसे नाम बिना व्याख्या के नहीं स्पष्ट किए जा सकते थे, इस लिए वह जैसे के तैसे भाषा में ग्रहण कर लिए गए। उदाहरण के लिए ऐसे नाम जिनका संबंध भूषा, भोजन, धर्म आदि से है। इसके अतिरिक्त फ़ारसी विजयी जाति की भाषा थी और एक ऐसी भाषा थी जो युद्ध और प्रेम की कथाओं के लिए अत्यंत उपयुक्त थी और जिस में श्रोज और मिठास भी थी। लोग फ़ारसी शब्दों का प्रयोग करना पसंद करते और उसमें अपनी शान समझते। इन शब्दों के आगे पुराने देशी शब्दों और मुहावरों को पीछे हटना पड़ा। ज़माना उन्हें पसंद नहीं करता था। अंग्रेज़ी भाषा पर भी इसी प्रकार का समय आया है, जब कि यूनानी और लातीनी विद्याओं का और ज्ञान का

यूरोप में पुनः संचार हुआ था। उस समय भी मोटे-मोटे पांडित्य प्रदर्शन करने वाले शब्दों के बोलने की परिपाटी चल निकली थी। जैसा भी हो, यहाँ पर जब विजेताओं और विजितों का मेलजोल बढ़ा तो एक ऐसी मिश्रित भाषा या बोली की आवश्यकता जान पड़ी जो दोनों जातियों को अच्छी प्रकार समझ में आ सके, और इस लिए कि विजित अपने विजेताओं को विशेष रूप से संतुष्ट रखना चाहते थे, उन्होंने विजेताओं की भाषा से बहुत से शब्द ले लिए। स्वामियों ने विजितों की भाषा की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया। पांडित्य प्रदर्शन के लिए भी अरबी फ़ारसी के शब्द बहुतायत से बोले जाने लगे। उर्दू साहित्य का आरंभ कविता से हुआ, और कविता फ़ारसी जाननेवालों के हाथ में मानों एक खिलौना थी, जिसे वह फ़ारसी शब्दों और मुहावरों की भूषा से सजाना चाहते थे। यह लोग हिंदी भाषा बहुत कम जानते थे और संस्कृत से नितांत अनभिज्ञ थे। इसी से यह होनहार बालक अपने वास्तविक माता-पिता से अलग होकर दूसरों की गोद में पला, और उन्होंने इसके साथ निस्संदेह बहुत कुछ किया। उनके लालन-पालन के प्रभाव में रहकर उर्दू का विकास बिल्कुल फ़ारसी के ढंग पर होता रहा। न केवल फ़ारसी शब्दों का एक समूह भाषा में प्रविष्ट हो गया वरन् फ़ारसी प्रयोग भी बहुतायत से उसमें होने लगे। जैसे संज्ञाओं और क्रियाओं के साथ आने वाले विशेषणों और क्रियाविशेषणों का स्थानांतर या "ब" उपसर्ग का अनेक शब्दों के साथ लगना आदि। यह उपयोग देशी व्याकरण के प्रयोगों के विपरीत पड़ते थे। आज भी हमारी साहित्यिक देशी भाषा में इसी प्रकार की फ़ारसी तरकीबें या प्रयोग बहुतायत से मौजूद हैं। यह अवश्य हुआ कि फ़ारसी के प्रभाव से उर्दू एक स्थायी भाषा के रूप में आज हमारे सामने उपस्थित है, लेकिन इसका खेद भ होता है कि मूल भाषा की विशेषताएँ, जिनसे उर्दू का आरंभ हुआ था, बहुत कुछ नष्ट हो गईं।

फ़ारसी भाषा और फ़ारसी साहित्य का तो उर्दू पर यूरोप की बहुत गहरा प्रभाव पड़ा ही था लेकिन पुर्तगाली और भाषाओं का अंग्रेज़ी का भी कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा। हां, डच और उर्दू पर फ्रेंच भाषाओं के प्रभाव या तो मिट गए या हैं भी तो प्रभाव इतने धुँधले कि मालूम नहीं होते। पुर्तगाली और अंग्रेज़ी दोनों ने उर्दू शब्दकोष में पर्याप्त वृद्धि की।

१५४० ई० में हिंदुस्तान के प्रसिद्ध बंदरगाहों पर पुर्तगाल निवासी अधिकार किए हुए थे, और पूर्वी प्रदेशों में प्रायः व्यापार उन्हीं के हाथों में था। उनका आबादियाँ हिंदुस्तान के समुद्र तट पर और देश के भीतर भी थीं। उनका संबंध हिंदुस्तान से अस्थायी न था वरन् वह यहाँ व्यापारियों, शासकों और धर्म प्रचारकों के रूप में बस गए थे। उन्होंने बड़ी उन्नति की थी और सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में उनकी भाषा हिंदुस्तान के बड़े भाग की साधारण भाषा हो गई थी, जो केवल हिंदुस्तानियों और यूरोप निवासियों के बीच विचार-विनिमय का माध्यम ही न थी वरन् यूरोप के सौदागर आपस में इसी भाषा का व्यवहार करते थे। इसी में ईसाई पादरी अपने धर्म का प्रचार करते थे। अतएव इसी कारण उसे ऐसे अनेक अवसर मिले कि वह अपना प्रभाव यहाँ की देशी भाषाओं पर डाल सकी। सबसे अधिक प्रभाव बँगला भाषा पर पड़ा। इसी प्रकार द्राविड़ी भाषाएँ जैसे मराठी, असामी, और उड़िया भी उससे बहुत कुछ प्रभावित हुईं। उर्दू पर भी उसके शब्द-कोष का प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव उत्तरी हिंदुस्तान में उस समय पड़ रहा था जब कि दखनी भाषा जो पुर्तगाली के प्रभाव से निकट होने के कारण प्रभावित हो चुकी थी और इसी प्रकार अन्य भाषाएँ उर्दू पर अपनी छाप अच्छी तरह डाल रही थी।

पुर्तगाली शब्द देशी भाषाओं में अपने वास्तविक रूप में शेष नहीं रहे, बल्कि जिस बिगड़े हुए रूप में वह हिंदुस्तान में बोले जाते थे और

हिंदुस्तानी भाषाएँ उन्हें स्वीकार कर सकती थीं, उसी रूप में वह अब भी बहुतायत से पाए जाते हैं। पुर्तगाल निवासियों ने केवल अपनी भाषा के शब्दों को हिंदुस्तानी भाषाओं में प्रविष्ट नहीं किया वरन् बहुत से अरबी, फ़ारसी और हिन्दी शब्द भी बहुधा यूरोपीय भाषाओं में पहुँचा दिए। कुछ अरबी और फ़ारसी शब्द पुर्तगाली भाषा द्वारा हमारे यहाँ फिर आए, क्योंकि जब अरबों ने स्पेन और पुर्तगाल पर अधिकार किया था तो उन देशों पर अपना बड़ा प्रभाव डाला था। पुर्तगाली शब्द हमारी भाषा में बहुत से बोले जा रहे हैं। उदाहरण के लिए मेवा और खाने की वस्तुओं के वर्ग में अन्ना, अनन्नास, अफोस (एक प्रकार का आम), बिस्कुट, काजू, पंप्र (बंबई में मिलने वाली एक मछली), पैपैया तंबाकू, तुरंज, चाय, सागू, गोभी आदि। सजावट के सामान, बाजा और हथियारों के वर्ग में आलपीन, अलमारी, अरगन, बजरा (नाव), बालटी, बोटल, पीपा, पिस्तौल, परेग (छोटी कौल), चाबी, साडुन, कोच, कप्तान, कारबीन, कारतूस, मेज़, तौलिया, गारद आदि। धार्मिक शब्द जैसे पादरी, गिरजा, कुर्स आदि। पहनने के वस्त्र जैसे साया, कमीज, काज, स्पेट आदि। भिन्न शब्द जैसे इंग्रज, आया, बंबा, पागर (चेतन), पावरोटी, छाप, नीलाम, मिस्त्री, कमरा, रूपया।

पुर्तगाल निवासियों ने ही सब से प्रथम यूरोप की बहुत सी वस्तुओं का प्रचार हिंदुस्तान में किया, अतएव उनके नाम उसी रूप में प्रचलित हो गए जिस रूप में कि उनके यहाँ बोले जाते थे। मिर्जा ग़ालिब ने पुर्तगाली शराब का बहुधा जिक्र किया है। अंग्रेज़ी भाषा एक जीवित और शासकों की भाषा है। उसने अपना बड़ा प्रभाव डाला है और डालती रहेगी। अंग्रेज़ी ज्ञान और साहित्य ने उर्दू गद्य और पद्य को बहुत लाभ पहुँचाया जिसकी चर्चा विस्तार से आगे किसी अध्याय में की जायगी। लेकिन इतना इस अवसर पर अवश्य बताना चाहिए कि अंग्रेज़ी भाषा ने वह शब्द उर्दू को दिए जिनके स्थान पर कोई दूसरे शब्द न थे

और वह शब्द अब इस भाषा के अंग बन गए हैं। अनुवाद का भी यह परिणाम हुआ कि बहुधा अंग्रेजी शब्द उर्दू में प्रविष्ट हो गए। उर्दू में अंग्रेजी शब्द बहुतायत से लेने के विषय में बहुत सावधानी करनी चाहिए, इसी प्रकार वह अंग्रेजी शब्द जो कि सुष्ठु उर्दू भाषा में घुल मिल गए हैं और मान्य हो चुके हैं उन्हें भाषा से निकालने का प्रयत्न भी भयावह है। उर्दू को संपन्न होना चाहिए और प्रत्येक प्रकार के शब्द जो उसके सौष्ठव से मेल खाते हों उसमें अवश्य सम्मिलित होने चाहिए वह चाहे अंग्रेजी के हों चाहे फारसी या संस्कृत के। केवल यही एक ढंग उर्दू भाषा की पुष्टि और उन्नति का है, और इसी प्रकार वह एक उच्च-कोटि की भाषा और हिंदुस्तान की आम भाषा बन सकेगी।

प्रत्येक भाषा में गद्य और पद्य की शब्दावली में गद्य और पद्य अंतर होता है। रचना में ओज और गंभीरता उत्पन्न की भाषा करने के लिए और इस विचार से कि गद्य और पद्य का भेद स्पष्ट हो पद्य की शब्दावली गद्य की शब्दावली की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होती है। इसी कारण साधारण और सीधे-सादे शब्द और बोलचाल के जो प्रयोग गद्य में प्रायः पाए जाते हैं पद्य के लिए अनुपयुक्त समझे जाते हैं। यही कारण था कि फारसी के मुहावरे उर्दू कविता में बहुतायत से प्रयुक्त होने लगे। यदि उर्दू गद्य के प्रारंभिक इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो जान पड़ेगा कि आरंभ में एक दूसरे से तुक खाने वाले वाक्य बहुत पसंद किये जाते थे। इस प्रकार के गद्य में बड़ा बनावटीपन होता था। जहूरी और बेदिल के अलंकृत गद्यशैली का अनुकरण विशेषता समझी जाती थी। हमारी पुरानी शैली की समता एलिज़बेथ कालीन अलंकृत और कृत्रिम गद्य से की जा सकती है।

मिर्ज़ा ग़ालिब, बस्कि सर सैयद अहमद ख़ां के समय से एक नया युग आरंभ हुआ जबकि पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से वह पुराना रङ्ग बदल

गया और तुकपूर्ण तथा फारसी अलंकरणों से भरी भाषा की अपेक्षा सहज सीधी भाषा पसन्द की जाने लगी। इस नए काल में गद्य शैली का पुराना ढङ्ग टिक भी नहीं सकता था क्योंकि व्यावहारिक क्षेत्र में सीधे सादे स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों की आवश्यकता है। अब भी फारसी शब्दों का बाहुल्य है लेकिन उससे रचना की विशिष्टता में कोई अंतर नहीं आता और न किसी प्रकार की कृत्रिमता उत्पन्न होती है। हिन्दी मुहावरों की सुन्दरताके साथ प्रयोग होता है और पैचदार प्रयोग से बचते हैं, लेकिन पद्य के उद्घान को अब भी फारसी स्रोत के जल से सींचते हैं और उसका उपवन अब भी उन्हीं अलंकरणों से सुशोभित होता है। हिन्दी शब्द और मुहावरे उपयोग में अवश्य आते हैं, लेकिन कमी के साथ और केवल उस समय जब वह फारसी शब्दों के साथ मेल खाते हैं।

गद्य की भाँति पद्य में भी कुछ परिवर्तन हो चला है और वर्तमान प्रवृत्ति पुराने शब्दाडंबर और कृत्रिमता के स्थान पर सादगी और स्वभावोक्ति पसन्द करने की है। लेकिन इस के होते हुए भी बहुधा साहित्यिक अब भी फारसी शब्दावली और प्रयोगों पर मोहित हैं। लेकिन इन्हें अतिशयता के साथ और उचित अनुचित सभी अवसरों पर उपयोग में लाना ठीक नहीं, जहाँ तक ही इस प्रकार के उपयोगों का कम करना ही ठीक है। हमारे मत में गद्य और पद्य की शब्दावली में और शैली कोई सैद्धांतिक भेद नहीं है।

बोल-चाल की भाषा लिखने की भाषा से बिल्कुल साहित्यिक अलग है। सादे और नित्य व्यवहार में आने वाले वाक्य, जो उर्दू प्रत्येक समय ज़बान पर चढ़े होते हैं, लिखते समय फारसी शब्दों से बदल जाते हैं, जिसका कारण उनका नयापन, ओज और महत्व है। आरंभ में निस्संदेह भाषा का क्षेत्र बड़ा संकुचित था और शब्द-कोष थोड़ा था और वह एक स्वतंत्र भाषा

कहलाने की अधिकारिणी न थी, क्योंकि उस समय तक इसमें भौंडापन था। न उस पर चमक आई थी और न उसमें इतनी क्षमता ही थी कि उसके द्वारा सूक्ष्म और कोमल भावों को प्रकट किया जा सके या विभिन्न भावों को व्यक्त किया जा सके। उसमें एक प्रकार का लचीलापन और शब्दों और प्रयोगों को ग्रहण करने की क्षमता अवश्य थी जिसका परिणाम यह हुआ कि जो शब्द और प्रयोग उसे मिलते गए वह सब उसमें सम्मिलित होते गए। धीरे-धीरे भाषा में पुष्टता और सफाई आती गई। पहले युग के कवि ऐसी भाषा में लिखते थे जिसमें आधी उर्दू और आधी फ़ारसी होती थी। क्रमशः उर्दू का अंश विशेषता प्राप्त करता गया और इसने और अंशों को अपने में समाविष्ट कर लिया। फ़ारसी शब्द और अपरिचित फ़ारसी प्रयोग इस प्रकार उर्दू में मिल गए कि वह अब हमारी भाषा का अंश बन गए, और उन्हें अब हम निकाल नहीं सकते। कुछ सज्जन जो इस युग में संस्कृत के प्रेमी हैं वह फ़ारसी शब्दों और प्रयोगों को भाषा से निकालने के यत्न में हैं। हमारे मत में यह एक व्यर्थ प्रयास है क्योंकि यही शब्दों का बाहुल्य जिस पर कि उर्दू को गर्व है, उसे इतना लोचदार और टढ़ बनाए हुए है कि प्रत्येक साहित्यिक कार्य उसके द्वारा हो सकता है।

पुराने अंग्रेज़ इतिहासकार जिन्होंने हिन्दुस्तान का वृत्तांत लिखा है, उर्दू को "इन्दोस्तानी" शब्द से संकेत करते थे। अठारहवीं सदी के आरम्भ के लेखकों ने लातीनी भाषा में उसे उर्दू भाषा के पुराने नाम "लैंग्वा इन्दोस्तानिका" लिखा है। इससे भी पहले के अंग्रेज़ इतिहासकार इसको "मूर्स" कहते थे। जान गिल-क्राइस्ट ने सन् १८८७ ई० में सबसे पहले "हिन्दोस्तानी" शब्द उर्दू के लिये व्यवहार किया और तभी से यह शब्द प्रचलित हो गया—यद्यपि इसका पता कुछ पुस्तकों में सन् १६१६ ई० तक मिलता

है जबकि मिस्टर यूल ने सबसे पहले इसका व्यवहार किया था। शाह-जहां ने इसे "उर्दू-ए-मुअल्ला" का प्रतिष्ठित नाम दिया! जबकि भाषा साहित्य के कार्यों के लिये परिपक्व हो चुकी थी "रेख्ता" शब्द (अर्थात् वह भाषा जिसमें देशी शब्दों के साथ फ़ारसी शब्द भी बहुतायत से प्रयुक्त हुए हों) बाद के लेखकों ने इस उद्देश्य से प्रयोग किया कि साहित्यिक भाषा और बोल-चाल की भाषा में भेद किया जा सके, और "उर्दू" शब्द का (जिससे कि ब्राज़ारू और अशिक्षित फ़ौजियों की भाषा का आभास होता था) उन्होंने प्रयोग करना भी पसंद न किया। रेख्ता शब्द भाषा के लिए अब बहुत कम व्यवहार में आता है। प्रारंभ में पद्य के लिए यही शब्द व्यवहृत किया जाता था, इस कारण कि गद्य का चलन उस समय बहुत कम था। मीर और मसहफ़ी तक के समय में "उर्दू" को फ़ारसी के प्रत्यक्ष "हिंदी" कहते थे, जिससे देश की भाषा का तात्पर्य था।

उर्दू की बर्ण-माला वही है जो फ़ारसी और अरबी उर्दू लिपि की। हाँ कुछ विशिष्ट अक्षर, जिनसे हिन्दुस्तानी भाषा की विशेष ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं, और जो फ़ारसी और अरबी में नहीं पाई जाती बड़ा दिए गए हैं। जैसे टं, ठ, ड, ढ, ढू, इन अक्षरों के लिखने के ढंग यह है कि  $\text{ٹ, ٹ, ڈ, ڈ, ڈू}$  पर या तो छोटा सा ( :: ) चिन्ह बना देते हैं या चार बिंदु ( :: ) दे देते हैं।

उर्दू का छंदशास्त्र फ़ारसी और अरबी छंदशास्त्र उर्दू छंद का अनुगामी है। अंग्रेज़ी में जिसे ऐक्सैट (स्वराघात) कहते हैं वह उर्दू में नहीं है। यह आवश्यक है कि प्राचीन यूनानी और रूसी कविता की भाँति स्वरों को यथावश्यक रूप में खींच कर मड़ा जाता है। उर्दू कविता में रदीफ़ और क़ाफ़िया (तुक) को बड़ा महत्व है। प्रचलित छंद १६ हैं, जिनमें से कुछ अरबी के विशेष छंद हैं



और कुछ में अब इतने परिवर्तन हो गए हैं कि उनका मूल रूप पहचाना नहीं जाता। छंद शास्त्रियों द्वारा निश्चित गणों की पुनरुक्ति से या विभिन्न गणों के मिश्रण से छंद बनते हैं। तक्रतीअ के विशेष नियम हैं। लिखे हुए अक्षरों के साथ उन अक्षरों की भी गणना होती है जिनका उच्चारण होता है यद्यपि वह लिखे नहीं जाते। वह अक्षर जो पढ़ने में नहीं आते वरन् केवल लिखे जाते हैं उनकी गणना तक्रतीअ में नहीं होती। अलिफ़ ममदूद जब किसी शब्द के आरंभ में आता है तो उसकी गिनती दो अक्षरों की होती है और इज़ाफ़त जो खींच कर पढ़ी जाय एक अक्षर के बराबर समझी जाती है। उर्दू में गण को रकन कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है स्तंभ जिस पर इमारत या खेमा टिकता है। पूरे छंद को 'बैत' और आधे को 'मिसरा' कहते हैं। मिसरा का शाब्दिक अर्थ है 'द्वार का एक पट'।

पद्य के वह विविध रूप जो फ़ारसी में स्त्रीकृत और वहाँ से उर्दू में लिए गए हैं निम्न हैं:—

गज़ल और क़सीदा यह पद्य के सबसे प्रसिद्ध प्रकार हैं। इन दोनों में भेद केवल विषय और लम्बाई का होता है। छंद रदीफ़ और क़ाफ़िया का प्रतिबंध दोनों में समान है। गज़ल का रंग प्रायः प्रेम संबंधी या सूफ़ियाना होता है और छंदों की संख्या साधारण तथा १० से १२ तक यद्यपि इस प्रतिबंध का पालन बहुत कम होता है। क़सीदा में साधारणतः किसी की प्रशंसा या अप्रशंसा होती है और उपदेशात्मक तथा दार्शनिक रंग का भी समावेश रहता है। छंदों की संख्या कम से कम २५ और अधिक से अधिक ७० तक होनी चाहिए लेकिन इस प्रतिबंध का पालन भी नहीं होता।

क़ता का शाब्दिक अर्थ टुकड़ा है। इसे गज़ल या क़सीदे का एक हिस्सा समझना चाहिए। छंद संख्या कम से कम दो होनी चाहिए अधिक से अधिक कितनी हों इसको कोई सीमा नहीं है। पहले दो मिसरों का तुक

मिलना आवश्यक नहीं, लेकिन शेरों में क़ाफ़िया का पालन होना चाहिए। क़तों में बहुधा उपदेशात्मक बातें रहती हैं और वह स्वतः पूर्ण होते हैं।

रुबाई—इसमें दो शेर या बैत होते हैं। इसी कारण इसे दो-बैती भी कहते हैं। पहले, दूसरे और चौथे मिसरे एक ही तुक में होते हैं, और अधिकांश एक ही छंद में रुबाई कही जाती है जिसे हज़ाज़ कहते हैं। विषय का रुबाइयों में प्रतिबंध नहीं। लेकिन चौथा मिसरा प्रायः विषय को स्पष्ट करने वाला सारपूर्ण और विशेष चमत्कार वाला होता है।

मसनवी—यह युद्ध और प्रेम के आख्यानो के लिए विशेष है। इसमें हर शेर के दोनों तुक मिलने चाहिए रदीफ़ ही या न हो। छंद संख्या निर्धारित नहीं है। मसनवी के लिए साधारणतः ५ विविध छंद निर्धारित हैं; कुछ के अनुसार सात हैं। मुस्तज़ाद उसको कहते हैं कि जब हर मिसरे के अंत में कुछ अतिरिक्त शब्द बढ़ाए जायें। यह अतिरिक्त शब्द उसी छंद में होते हैं जो मुख्य मिसरे के दो अंतिम रकनों का होता है। लेकिन इनका तुक कहीं अलग भी होता है। तज़ज़ीअ-बंद और तरकीब बंद यह भी पद्य के भेद हैं। इन में बहुत से बंद होते हैं और प्रत्येक बंद में बराबर या कभी-कभी संख्या में चरण होते हैं, जिनके तुक मिलते हैं। हर बंद के अंत में एक बैत होता है, जो ऊपर के बंद को नीचे के बंद से पृथक् करता है, और तुक में भी उनसे भिन्न होता है। यदि प्रत्येक बंद के बाद एक ही बैत बारबार आए तो ऐसे पद्य को तज़ज़ीअ बंद कहते हैं, और यदि बैत बदलता जाय तो तरकीब बंद कहलाता है। इन दोनों बंदों में समस्त शेर एक ही छंद में होते हैं।

मुख्ज़ा चार चरणों या मिसरों के पद्य को कहते हैं जिसमें सब मिसरे समान तुक वाले हों। मुखम्मस में चार मिसरों के स्थान पर पांच

मिसरे होते हैं और पांचवें मिसरे का तुक बदला हुआ होता है। शेष रूप मुरब्बा का सा है। मुसहस का रूप भी प्रायः ऐसी ही है। भेद इतना है कि पहले चार मिसरे या दो बैत तो एक तुक के और शेष दो मिसरे पृथक् होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भेद—मुसब्बा आदि—भी इसी प्रकार के होते हैं।

वासोख्त—पद्य का वह प्रकार है जिसमें प्रेमी अपने प्रिय की निर्दयता, बेवफाई, स्पर्द्धा के साथ प्रेम तथा अपने विरह आदि का उपालंभ करता है। मानो वह अपने प्रिय को धमकाता हो कि यदि उसका व्यवहार इसी प्रकार का रहा तो प्रेमी उससे अलग होने पर विवश होगा।

तारीख—यह पद्य का वह प्रकार है जिसमें किसी घटना का काल-क्रम पद्य के अंतर्गत आए गए अक्षरों के क्रम से निकाला जाता है।

फ़र्द—किसी पूर्ण या अपूर्ण गज़ल के एक शेर को कहते हैं जो उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। क़सीदा और ग़ज़ल का पहला शेर मतला और अंतिम शेष मक़ता कहलता है जिसमें कवि अपना तख़ल्लुस या उपनाम देता है। पद्य की पुस्तकों में प्रायः पहले 'हम्द व नात' (ईश्वर तथा रसूल की प्रशंसा), फिर बादशाह या शासक की प्रशंसा, उसके बाद रचना का प्रयोजन और कुछ आत्म-प्रशंसा संबंधी पद्य होते हैं। कविता संग्रह को मजमूआ कहते हैं, जिसमें क्रम प्रायः इस प्रकार होता है—क़सीदे, ग़ज़लें, क़िते, रुबाइयाँ, मसनवियाँ आदि।

गद्य के तीन प्रकार हैं:—(१) अरारी, जो नितान्त सहज और सीधा सादा होता है। (२) मुरजज़ जिसमें छंद होता है लेकिन तुक का अभाव रहता है और (३) मुसज्जा जिसमें छंद नहीं होता लेकिन तुक का प्रतिबंध होता है। मुसज्जा गद्य के भी तीन भेद हैं:—(१) मुतावजी (२) मुतरफ़ और (३) मुतवाज़न।

मुतवाजी गद्य में दो वाक्यों के अंतिम शब्द समान गण और समान तुक के होने चाहिए, मुतरफ़ में अंतिम शब्द के समान क़ाफ़िया तथा तुकवाला होना आवश्यक नहीं मुतवाज़न में समान गण होते हैं लेकिन समान क़ाफ़िया वाले या तुकवाले होना आवश्यक नहीं। यह सभी प्रकार अब व्यवहार में उठ गये हैं, क्योंकि उन्नीसवीं सदी के अंत में इस प्रकार के बनावटी शब्द विन्यास और तुकबंदी का अंत हो गया है।

“तज़क़िरा” में कवियों का जीवन चरित्र संक्षेप में होता है वर्णित और “गुलदस्ता” उनकी रचनाओं के संकलन को कहते हैं।